जनसत्ता

27 दिसंबर, 2019

भूजल का प्रबंधन

भूजल का गिरता स्तर और इसकी वजह से भविष्य में गहराने वाले संकट के मसले पर पिछले कुछ सालों से लगातार चर्चा होती रही है। इस चिंता के मद्देनजर न केवल भारत, बल्कि वैश्विक पैमाने पर सम्मेलनों और सेमिनारों में आने वाले दिनों में पानी के अभाव को लेकर चेतावनी दी जाती रही है। लेकिन चिंता जताना और संकट का हल निकालना अलग-अलग बातें हैं। यह सही है कि सरकार की ओर से जल संरक्षण को लेकर कई कार्यक्रम संचालित हो रहे हैं तो उनका मकसद चुनौतियों से पार पाना ही है। लेकिन यह भी सच है कि स्थानीय हालात और जरूरतों के आधार पर अगर कोई पहलकदमी होती है, तभी इस संकट से पार पाने की उम्मीद की जा सकती है। इस लिहाज से देखें तो बुधवार को लखनऊ में प्रधानमंत्री ने जिस 'अटल भूजल योजना' की शुरुआत की है, वह इस दिशा में एक अहम कदम है। अगर यह योजना अपने बुनियादी स्वरूप में जमीन पर उतरती है तो इससे फिलहाल सात राज्यों के आठ हजार तीन सौ पचास गांवों को लाभ मिलने की उम्मीद है।

दरअसल, भूजल के स्तर को लेकर चिंता लंबे समय जताई जाती रही है, लेकिन इस गहराती समस्या से निपटा कैसे जाए, इसकी दिशा अभी पूरी तरह साफ नहीं रही है। न केवल वर्षा से जल के संरक्षण के पहलू पर कोई बड़ी कार्ययोजना जमीन पर नहीं उतर पाई है, न अन्य स्रोतों की वास्तविक स्थिति का आकलन करके उसके समाधान को लेकर ठोस पहल हुई है। हालांकि 'अटल भूजल योजना' की शुरुआत के करीब छह महीने पहले भी प्रधानमंत्री ने पानी की एक-एक बूंद के संरक्षण को लेकर जागरूकता अभियान शुरू करने पर जोर दिया था। यह अपने आप में यह बताने के लिए काफी है कि भूजल के स्तर और समग्र पैमाने पर जल की उपलब्धता को लेकर सरकार फिक्रमंद जरूर है, लेकिन शायद एक समग्र योजना के साथ जमीनी अमल अभी बाकी है। समस्या यह है कि भारी पैमाने पर पानी का बेलगाम उपयोग और उसकी बर्बादी करने वाले बड़ी कंपनियों और संस्थानों पर शायद ही किसी की लगाम है। यह गांवों और शहरों में वर्षा जल के संरक्षण को लेकर सजगता नहीं होने और इससे पैदा होने वाली समस्या से इतर एक पहलू है, जिसमें भारी मात्रा में पानी की बर्बादी होती है। सवाल है कि जल संरक्षण को लेकर जताई जाने वाली चिंता के मद्देनजर क्या इस समस्या के बुनियादी पहलुओं पर भी गौर किया जाएगा?

देश में ऐसे तमाम इलाके हैं, जहां भूजल का स्तर चिंताजनक पैमाने तक नीचे चला गया है। इसका एक बड़ा असर फसलों के उत्पादन के चक्र पर पड़ा है, जिसमें सिंचाई के लिए ज्यादा पानी की जरूरत वाली फसलें बुरी तरह प्रभावित हो रही हैं। हाल के दिनों में यह राय सामने आई है कि सिंचाई के लिए जल के बढ़ते संकट के मद्देनजर कम पानी की जरूरत वाली वैकल्पिक फसलें उगाने और सूक्ष्म सिंचाई की ओर कदम बढ़ाने की जरूरत है। हालांकि यह किसी से छिपा नहीं है कि हमारे देश में पानी के संरक्षण के कई पारंपरिक तौर-तरीके चलन में रहे हैं। लेकिन यह समझना मुश्किल है कि आखिर किन वजहों से हम उन परंपराओं से दूर होते गए। आखिर ऐसा कैसे मुमकिन हुआ कि अपने जीवन के स्रोत के रूप में पानी की अहमियत को गौण हो जाने दिया और नतीजतन आज भूजल के गिरते स्तर से लेकर प्यास तक एक बड़ी समस्या के रूप में हमारे सामने है। समाज और सरकार की जिम्मेदारी के बरक्स पानी आज लगभग पूरी तरह बाजार के हवाले हो गया है। इतना तय है कि संकट का सही आकलन और उसके मुताबिक हल निकालने की कोशिश समय रहते शुरू नहीं की गई तो समस्या बेहद सकती है।

सहूलियत की दर

वस्तु एवं सेवा कर यानी जीएसटी को लागू हुए करीब ढाई साल हो गए। अब तक इसमें थोड़े-थोड़े अंतराल पर कई बार बदलाव किए जा चुके हैं। इसके बावजूद करों में कटौती की मांग उठती रहती है। इसकी एक वजह यह है कि जीएसटी में करों के चार ढांचे रखे गए हैं- पांच, बारह, अठारह और अट्ठाई फीसद। जिन वस्तुओं पर कर की दर अट्ठाईस फीसद रखी गई है, उसे घटाने की मांग उठती रहती है। शुरुआत में कुछ वस्तुओं पर कर की दरें बहुत ऊंची थीं, जिन्हें लेकर विवाद हुआ और उन्हें घटाना पड़ा। उनमें कई वस्तुएं कृषि क्षेत्र से भी जुड़ी थीं। पिछले काफी दिनों से माना जा रहा है कि जीएसटी की दरें स्थिर हो चुकी हैं, पर इनमें कटौती की मांग रह-रह कर उठती रहती है। इसका असर यह भी पड़ा है कि जीएसटी का संग्रह अनुमानित लक्ष्य तक नहीं पहुंच पा रहा है, जबकि राज्यों को केंद्र की तरफ से मिलने वाले करों के अंशदान का दबाव बना हुआ है। इस समस्या से पार पाने के लिए नीति आयोग के एक सदस्य ने सुझाव दिया है कि जीएसटी के कर ढांचे में बार-बार बदलाव उचित नहीं है, अगर जरूरत पड़े, तो इस पर साल में एक बार विचार किया जाना चाहिए। फिर कर ढांचों के चार के बजाय दो ही व्यावहारिक स्तर होने चाहिए। इसका मकसद कर संग्रह को बढ़ाना होना चाहिए। देखना है, इस पर जीएसटी परिषद कहां तक अमल करती है।

जीएसटी लागू करने के पीछे सरकार का इरादा था कि इससे राज्यों की तरफ से लगने वाले अनेक करों से उत्पादकों और उपभोक्ताओं को मुक्ति मिलेगी। इस तरह वस्तुओं की कीमतें घटेंगी और कारोबार में सुगमता आएगी, मगर अभी तक जीएसटी की उलझनें समाप्त नहीं हुई हैं। इसे लागू करने के तीन साल बाद करों में स्थिरता आने और कारोबारियों, केंद्र और राज्य सरकारों को लाभ मिलने लगने की उम्मीद जताई गई थी। जिन भी देशों में जीएसटी लागू किया गया, वहां के यही अनुभव रहे कि इससे राज्यों को होने वाले नुकसान तीन साल के बाद बंद हो गए थे। मगर हमारे यहां तीन साल होने को आ रहे हैं और जीएसटी को लेकर उलझनें ही दूर नहीं हो पाई हैं। बार-बार करों में बदलाव से कारोबारियों की उलझनें तो बढ़ती ही हैं, राजस्व पर भी प्रतिकूल असर पड़ता है। ऐसे में कर ढांचों को लेकर एक बार अंतिम रूप से विचार करने और उनके ढांचे चार के बजाय दो करने का सुझाव उचित ही है।

करों का निर्धारण वस्तुओं के उत्पादन, उपभोग और विभिन्न आयवर्ग के उपभोक्ताओं को ध्यान में रख कर किया जाता है। जिन वस्तुओं का उत्पादन अधिक होता है और जिनका उपभोक्ता वर्ग अधिक है, उन पर सामान्यतया कर की दरें कम रखी जाती हैं। कृषि और डेरी उत्पाद उन्हीं में आते हैं, जिनका उपभोग गरीब से लेकर अमीर वर्ग तक करता है। इसलिए इन पर कर की दर पांच फीसद रखा जाना उचित है। मगर जिन वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग संपन्न और विशिष्ट वर्ग करता है या जिनके उत्पादन में विशेष तकनीक और प्रसंस्करण प्रविधि आदि का उपयोग होता है, जिन्हें विलासिता की वस्तुएं कहा जाता है, उन पर कर की दरें ऊंची रखी जाती हैं। इस तरह जब सभी परोक्ष कर समाहित होकर केंद्रीय कर में शामिल हो गए हैं, तब करों के चार ढांचे रखने का कोई तर्क नहीं है। इसे अंतिम रूप से व्यावहारिक बनाने की सलाह उचित है।

कल्पमेधा

जिस समय हम समझते हैं कि हम नेतृत्व कर रहे हैं, उस समय अक्सर हम दूसरे के नेतृत्व में होते हैं।

– बायरन

मुशर्रफ को सजा से हैरान सेना

ब्रह्मदीप अलूने

पाकिस्तान में पिछले कुछ सालों में न्यायिक सक्रियता से पाकिस्तान की सेना, खुफिया एजेंसी आइएसआइ और राजनीतिक दलों के नेता बेचैन हैं। हाल में पाकिस्तान के सैन्य प्रमुख जनरल बाजवा की उम्र विवाद को लेकर भी सेना और अदालत आमने-सामने रही। इस मामले में न्यायाधीशों पर अशोभनीय टिप्पणी की गई। यहां तक कि उन्हें भारत और अमेरिका का एजेंट बताने की कोशिश भी हुई।

नीतियों, साधनों, कार्यों और दृष्टिकोण से सेना का सर्वसत्तावाद प्रजातांत्रिक व्यवस्था के बिल्कुल विपरीत होता है। ऐसे में न्यायपालिका की निष्पक्षता उसे स्वीकार नहीं हो सकती। सैन्य शासन की परंपराओं से अभिशप्त राष्ट्र पाकिस्तान में लोकतंत्र होने का दिखावा भले किया जाए, लेकिन पूर्व सैन्य तानाशाह परवेज मुशर्रफ को देशद्रोह के आरोप में फांसी की सजा देने के अदालती फैसले के बाद विरोध से समूची व्यवस्था की कलाई खुल गई है। 14 अगस्त, 1947 को अस्तित्व में आए पाकिस्तान ने तीन दशक से ज्यादा का सैन्य शासन देखा और भोगा है। 1956 में देश का संविधान लागू हुआ और इसे इस्लामिक गणतंत्र का नाम दिया गया। लेकिन गणतांत्रिक परंपराओं के स्थापित होने से पहले ही 1958 में पाकिस्तान में सेना द्वारा शासन पर नियंत्रण कर लिया गया। मार्शल अय्यूब खान पाकिस्तान के नए राष्ट्रपति बने और इस प्रकार पाकिस्तान के संसदीय लोकतंत्र को सेना ने अपने कब्जे में कर लिया। इसके बाद से लगातार सेना पाकिस्तान की सुरक्षा और भारत विरोध के नाम पर अपना प्रभुत्व जमाए हुए है। आक्रामक और कूटनीतिक तरीकों से सेना का अधिनायकवाद मजबूत होता रहा और यह अब पाकिस्तान की नियति बन गया है।

वैश्विक दबाव के आगे पाकिस्तान को लोकतांत्रिक दिखाने की कोशिशें भी की गईं, लेकिन इतिहास में एक बार ही कोई निर्वाचित सरकार अपना कार्यकाल पूरा कर सकी। इस समय देश में इमरान खान की सरकार है और वे सेना द्वारा स्थापित प्रधानमंत्री कहे जाते हैं। इन परिस्थितियों में देश की न्यायपालिका के पूर्व सेना अधिकारी पर एक न्यायिक निर्णय से सत्ता और सेना परेशान और हैरान है। पूर्व सेना प्रमुख परवेज मुशर्रफ के खिलाफ देशद्रोह का मामला तीन नवंबर 2007 को पाकिस्तान में आपातकाल लगाने से जुड़ा था। उस समय मुशर्रफ ने अपने प्रभाव का इस्तेमाल करते हुए देश में आपातकाल घोषित कर संविधान को निलंबित कर दिया था।

समान व्यवहार और समान दृष्टिकोण से ही न्यायिक व्यवस्था मजबूत और विश्वसनीय होती है। लेकिन पाकिस्तान में सेना का संकल्पित सर्वाधिकार न्यायपालिका को स्वतंत्र न्यायिक निर्णय की आजादी नहीं देता। ऐसे में सेना ने अपने पूर्व अधिकारी को अदालत द्वारा दी गई कड़ी सजा को चुनौती देने में देर नहीं की। पाकिस्तानी सेना के प्रवक्ता मेजर जनरल आसिफ गफूर ने बाकायदा बयान जारी कर अदालत के फैसले की आलोचना करते हुए इसे जल्दबाजी में सुनाया गया फैसला बताया। मुशर्रफ का बचाव करते हुए सेना की ओर से कहा गया कि पूर्व सेना प्रमुख और पूर्व राष्ट्रपति जनरल परवेज मुशर्रफने मुल्क की चालीस साल तक सेवा की है। जिस व्यक्ति ने मुल्क के लिए जंग लड़ी, वो कभी देशद्रोही नहीं हो सकता है। इस अदालती कार्यवाही में संविधान की भी उपेक्षा की गई है, यहां तक कि अदालत में मुशर्रफ को खुद का बचाव करने का भी मौका भी नहीं दिया गया, जो किसी भी नागरिक का बुनियादी अधिकार है। सेना की इस कड़ी टिप्पणी से यह साफ हो गया है कि पाकिस्तान का लोकतंत्र सैन्य नियंत्रित है और वहां न्यायपालिका सैन्य अधिकारियों को न्याय की समान परिधि में रखने का साहस नहीं कर सकती। सेना ने न्यायपालिका को ही कटघरे में खड़ा करते हुए यह भी कह दिया कि जनरल परवेज मुशर्रफ किसी सूरत में गद्दार नहीं हो सकते।

पाकिस्तान में पिछले कुछ सालों में न्यायिक सक्रियता से पाकिस्तान की सेना, खुफिया एजेंसी आइएसआइ और राजनीतिक दलों के नेता बेचैन हैं। हाल में पाकिस्तान के सैन्य प्रमुख जनरल बाजवा की उम्र विवाद को लेकर भी सेना और अदालत आमने-सामने रही। इस मामले में न्यायाधीशों पर अशोभनीय टिप्पणी की गई। यहां तक कि उन्हें भारत और अमेरिका का एजेंट बताने की कोशिश भी हुई। इस मामले की सुनवाई के दौरान प्रधान न्यायाधीश न्यायमूर्ति आसिफ सईद खोसा ने अपनी टिप्पणी में इसे निराशाजनक बताते हुए कहा था कि संवैधानिक संस्थाओं के बारे में ऐसी बातें नहीं होनी चाहिए। इसके पहले न्यायपालिका पाकिस्तान के पूर्व प्रधानमंत्री यूसुफ रजा गिलानी और नवाज शरीफ को भी कड़ी सजा सुना चुकी है। हालांकि पाकिस्तान के सुप्रीम कोर्ट ने खुफिया एजेंसी आइएसआइ और सेना को सियासत से अलग रहने का निर्देश दिया था। इसके बाद आइएसआइ पर तंज कसने के चलते हाईकोर्ट के जज शौकत अजीज सिद्दीकी को पद से हटा दिया गया था। इस घटना से यह साफ हो गया था कि आइएसआइ की पाकिस्तान में बहुत अहमियत है और उस पर अदालती फैसला लागू करना आसान काम नहीं है। किसी लोकतांत्रिक देश में न्यायपालिका के फैसलों पर विपरीत टिप्पणी करने का साहस किसी सत्ताधारी प्रधानमंत्री का नहीं हो सकता। लेकिन सेना के दबाव में इमरान खान ने मुशर्रफ पर दिए गए फैसले को अराजकता उत्पन्न करने वाला बताया, वहीं देश के अटार्नी जनरल ने ऊपरी अदालत में मुशर्रफ का बचाव करने की बात कही।

लोकतंत्र की मजबूती के लिए राजनीतिक दलों में मुद्दों पर आधारित विरोध के साथ ही आम सहमति भी जरूरी है, लेकिन पाकिस्तान में सेना अपना नियंत्रण बनाए रखने के लिए सत्ता के संवैधानिक संकट को पसंद करती है। राजनीतिक अस्थिरता से लोगों का भरोसा सेना पर बढ़ता है और यह स्थिति सेना के लिए मुफीद मानी जाती है। कुछ साल पहले तक सेना राजनीतिक अस्थिरता फैलाने के लिए राष्ट्रपति का सहारा लेती थी। जनरल जिया उल हक और परवेज मुशर्रफ जैसे तानाशाहों ने इसका भरपूर दुरुपयोग किया। साल 2008 में जरदारी ने राष्ट्रपति बनते ही इस स्थिति को उलट दिया और देश की व्यवस्था में एक बड़ा बदलाव कर दिया। एक संवैधानिक संशोधन से राष्ट्रपति की शक्तियां बहुत ही सीमित कर दी गईं और पाकिस्तान की चुनी हुई सरकार को भंग करना मुश्किल बना दिया गया। ऐसे में सेना न्यायपालिका की ओर देखती है जिससे लोकतांत्रिक सरकारों को काबू किया जा सके। साल 2018 में नवाज शरीफ पर प्रतिबंध लगाते हुए न्यायमूर्ति उमर अता बंदियाल के फैसले में कहा गया था कि भविष्य में किसी भी सांसद या लोक सेवक को अगर अनुच्छेद 62 के तहत अयोग्य ठहराया जाता है, तो उन पर यह प्रतिबंध स्थायी होगा, ऐसे व्यक्ति चुनाव में हिस्सा नहीं ले सकेंगे और न ही संसद के सदस्य बन सकेंगे। पाकिस्तान में सेना ऐसे न्यायिक निर्णयों को लोकतांत्रिक नेताओं पर लगाम लगाने के तौर पर पसंद करती है, लेकिन उसे अपने मामलों में कोई दखल स्वीकार नहीं है।

पाकिस्तान में कोई भी लोकतांत्रिक सरकार सेना की इच्छाओं की अनदेखी करने का साहस नहीं जुटा पाती है। नवाज शरीफ और बेनजीर भुट्टो ने ऐसा करने की कोशिश की थी और उन्हें सत्ता से बेदखल होना पड़ा था। बेनजीर भुट्टो की हत्या एक आतंकवादी हमले में साल 2007 में हो गई थी और ऐसा माना जाता है कि सेना के उच्च अधिकारियों ने उनकी सुरक्षा को लेकर जानबूझ कर लापरवाही की। यहां तक कि बेनजीर बुट्टो की हत्या में भी सेना और आइएसआइ की साजिश की बातें सामने आती रही हैं। जनरल जिया उल हक ने न्याय को नजरअंदाज कर हत्या के एक मामले में जुल्फिकार अली भुट्टो को फांसी पर लटकवा दिया था। पाकिस्तान सेना ने इन तानाशाहों का हमेशा समर्थन किया है।

परवेज मुशर्रफ को लेकर पाकिस्तान के विपक्षी दल और न्यायपालिका सख्त हैं। ऐसे में इमरान खान यदि सेना के साथ मिलकर मुशर्रफ को बचाने का प्रयास करते है तो देश में विरोधी दलों के स्वर बुलंद हो सकते हैं। बहरहाल, पाकिस्तान में सेना और न्यायपालिका आमने-सामने है। पाकिस्तानी सेना के प्रवक्ता ने मुशर्रफ के पक्ष में बयान देकर और अदालती फैसले की आलोचना कर अदालत की अवमानना की है और यह स्थिति पाकिस्तान का आंतरिक, राजनीतिक और संवैधानिक संकट बढ़ा सकती है।

खुश रहने का हुनर

विलास जोशी

दुनिया मेरे आगे

यह देख कर अक्सर बहुत दुखी हो जाता हूं कि मेरा बच्चा खुश होना ही भूल गया है। ऐसी भी बात नहीं है कि उसने कभी मुझसे कुछ मांगा हो और मैंने उसे न दिया हो। हम पति-पत्नी के सरकारी नौकरी में होने के नाते रोजमर्रा का एक रूटीन है। सुबह की पूरी तैयारी के बाद हम दोनों दफ्तर के लिए निकलते हैं और बेटा विद्यालय। शाम को हम जब थके-हारे लौटते हैं, तब बेटा हमें मोबाइल में उलझा नजर आता है। मोबाइल से दिल भर जाने के बाद वह टीवी देखने में मशगूल हो जाता है। हम उसे रोजाना समाझाते हैं कि बेटा, देर तक मोबाइल चलाते रहना और फिर आधी-आधी रात तक टीवी देखते रहना सेहत के लिए बहुत हानिकारक है। इसके बाद वह कमरे में जाकर बिस्तर पर लेट जाता है। देर रात तक टीवी देखते रहने के कारण वह सुबह देर से उठता है। वह उठाने की कई कोशिशों के बाद। एक दिन उसने मेरे सामने उसके स्कूल के शिक्षक का लिखा नोट दिया, जिसमें लिखा था- 'कृपया, आप मुझे जल्दी आकर मिलें। मैं आपसे कुछ बातें करना चाहता हूं'।

अगले दिन मैं उसके विद्यालय गया। शिक्षक महोदय कक्षा में थे, इसलिए मैं प्रतीक्षा कक्ष में बैठ कर इंतजार करने लगा। दिमाग में कई बातें घूमने लगीं। एक समय हम भी बच्चे थे। उस समय हम खेल के मैदान में जाकर क्रिकेट या कबड्डी खेलते थे। साधारणतया उस समय सबके घरों में ही गरीबी का दौर था, इसलिए हम सिगरेट और माचिस की डिब्बी के छिब्बे इकट्ठा कर उनसे खेलते थे। छुट्टी के दिन गिल्ली-डंडा, छुपम-छुपाई, गुलाम-डंडा, भंवरे और सरिया-गडावनी आदि खेल खेलते थे। कितना मजा आता था खुले मैदान में खेलने में। तेज धूप रहती थी, फिर भी पसीने में नहाते हुए मैदान में दौड़ते रहते थे।

हमारे पास उन दिनों पैसे नहीं होते थे और खेलने के साधन भी पर्याप्त नहीं होते थे, फिर भी हम एक दूसरे के साथ मिल कर खेलते और खुश होते थे। जब तीन-चार महीने में एक बार हमारे माता-पिता कोई फिल्म देखने ले जाने की बात करते थे, तो सुबह से ही फिल्म देखने जाने का एक आकर्षण और जिज्ञासा हमारे मन में रहती थी। तब लगता था कि कब शाम होगी और हम फिल्म देखने सिनेमा हॉल में जाएंगे। उन दिनों फिल्म देखने जाना भी किसी बड़े उत्सव से कम आनंददायक नहीं था। हमारा बचपन कितने लड़कपन में गया, मालूम ही नहीं पड़ा। जबकि आज हम अपने बच्चों को सारी सुविधाएं दे रहे है, फिर भी उनके चेहरे से खुशी नदारद है। कहां गईं उनकी खुशियां? कौन चुरा कर ले गया उनका लड़कपन?

अक्सर लगता है कि उनके प्रथम अपराधी हम पालकगण ही हैं। हमने ही खुद उन्हें मोबाइल और टीवी की दुनिया में धकेल दिया है। हमें दफ्तर जाना है तो बच्चों से कहा- 'बेटा, हम दफ्तर जा रहे हैं, तुम थोड़ी देर मोबाइल पर खेल खेलना, फिर थोड़ा टीवी देख लेना और उसके बाद पढ़ाई करने बैठ जाना'। या फिर कभी-कभी हमें किसी पार्टी में जाना हुआ तब कहते हैं कि बेटा, तुम पड़ोस के अपने दोस्त को अपने घर बुला लेना और टीवी पर कोई फिल्म देखते रहना।

बहरहाल, बेटे के स्कूल में बुलाने पर मैं उसके शिक्षक के कक्ष में गया तो उन्होंने मेरी जिज्ञासा को भांपते हुए कहा- 'आपका बच्चा प्रतिभाशाली है। वह विद्यालय की हर एक गतिविधियों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेता है। लेकिन मैंने गौर किया है कि फिर भी उसके चेहरे पर जो खुशी नजर आनी चाहिए, वह मुझे नजर नहीं आती।' मैंने कहा कि आप उसके क्लास टीचर हैं, इसलिए मैं आपसे ही निवेदन करता हूं। हम क्या करें कि हमारे बच्चे के चेहरे पर सच्चे दिल से उसके खुश होने का नूर हमको भी नजर आ सके! इस पर वे बोले- 'आज के आपाधापी के दौर में किसी भी माता-पिता के पास अपने बच्चों को देने के लिए 'क्वालिटी समय' है ही नहीं। शायद इसीलिए हमारे बच्चे स्वाभाविक रूप से खुश होना भूल गए हैं। अगर आप अपने बच्चों को खुश देखना चाहते हैं तो पहले हमें खुद यह कला सीखनी होगी। हम बच्चों को भारी-भरकम तोहफे देकर यह सोचते हैं कि शायद उसकी खुशी इसमें छिपी है। लेकिन यह एकदम गलत है, क्योंकि यह एक तरह उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने का सामान भर है। अगर आप अपने बच्चे के चेहरे पर सच्ची खुशी देखना चाहते हैं तो उन्हें अपना बेहतरीन समय दें। उनके साथ रह कर पिकनिक मनाएं, उन्हें किसी पार्क में ले जाएं। उनके साथ बच्चे बन कर मैदान में खेलें। तब जो खुशी उनको मिलेगी, वही आपके लिए भी खुशी के कीमती पल होंगे। आप जो उन्हें देंगे, वही वे भी आपको लौटाएंगे।'

बेटे के स्कूल से लौटते वक्त उस शिक्षक के सारे शब्द मेरे दिमाग में किसी चलचित्र की तरह चल रहे थे। जब हम आज अपना समय उन्हें देंगे, तभी उनका कल हमें खिलखिलाता नजर आएगा। लगभग यही या इससे मिलती-जुलती बातें ही सब बच्चों पर लागू होती हैं और यही उनके खुश रहने का असली हुनर है।

अधूरा इंसाफ

सऊदी अरब की एक अदालत ने पत्रकार जमाल खाशोग्गी की हत्या के मामले में पांच लोगों को सजा-ए-मौत सुनाई है और तीन लोगों को चौबीस साल की जेल की सजा भी सुनाई गई। मगर जमाल खशोग्गी के परिवार वाले और तुर्की इस फैसले से खुश नहीं है। उनका मानना है कि सिर्फ हत्या करने वाले ही दोषी नहीं होते, बल्कि साजिश रचने वाले भी उतने ही दोषी होते हैं और उन्हें भी मौत की सजा मिलनी चाहिए थी। खशोग्गी के परिवार और तुर्की के अधिकारियों का आरोप सीधे-सीधे सऊदी अरब के क्राउन प्रिंस मोहम्मद बिन सलमान पर था जिनके इशारे पर खशोग्गी की हत्या की गई। मगर मोहम्मद बिन सलमान इस आरोप से इनकार करते रहे हैं कि उनका खशोग्गी की मौत से कोई लेना-देना है। खशोग्गी को आखिरी बार दो अक्तूबर 2018 को तुर्की के इस्तांबुल स्थित सऊदी वाणिज्यिक दूतावास के बाहर देखा गया था। तुर्की ने सऊदी अरब पर आरोप लगाया था कि दूतावास में जमाल खशोग्गी की हत्या कर दी गई थी। लेकिन उनकी लाश नहीं मिली।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी इस हत्या की कड़ी आलोचना हुई थी। यहां तक कि सऊदी अरब का करीबी दोस्त अमेरिका भी स्पष्ट कर चुका था कि जमाल खशोग्गी की हत्या प्रिंस सलमान के कहने पर हुई थी। दुनिया भर में इस हत्या की खबर सुर्खियों में रही थी और इसके लिए सऊदी सरकार की कड़ी आलोचना भी हुई थी, क्योंकि पत्रकार खशोग्गी सऊदी अरब की सरकार के खिलाफ लिख रहे थे और अरब की जनता के अधिकारों का हनन करने वाली सरकार को बेनकाब करना चाहते थे। प्रिंस सलमान को यह रास नहीं आया और फिर खशोग्गी की हत्या करवा दी गई। सितंबर में सऊदी अरब के क्राउन प्रिंस मोहम्मद बिन सलमान ने सार्वजनिक तौर पर जमाल उस हत्या की जिम्मेदारी ली थी और कहा था कि उनके रहते ही हत्या को अंजाम दिया गया है। सवाल है कि न्यायिक प्रक्रिया में इन पहलुओं को ध्यान में क्यों नहीं रखा गया?

● *ब्रजेश सैनी, बिंदकी, फतेहपुर, उप्र*

चकाचौंध के बरक्स

सरकार चांद पर जाने बुलेट ट्रेन चलाने और देश को डिजिटल बनाने की बात करती है। लेकिन विश्व के साथ कदम से कदम मिला कर चलने और तेजी से बढ़ते भारत में आज भी असंख्य बेघर लोग सड़क के किनारे अपनी जिंदगी गुजारने को विवश हैं। सर्दी धीरे-धीरे बढ़ने लगी है और उसके साथ-साथ सर्द हवाओं का रफ्तार भी तेज हो गया है। दिन में थोड़ी राहत होती है, लेकिन रात को और सुबह में लोगों का घरों में रहना मुहाल हो जाता है। लेकिन इसी हाड़ कंपाती ठंड में सैकड़ों-हजारों लोग राजधानी की सड़कों पर खुले आसमान के नीचे वक्त काटते हैं। जिम्मेदार लोगों और सरकार को इस हकीकत को भी देखना चाहिए। दिल्ली का तो यह हाल है, जो देश की राजधानी है तो बाकी शहरों का क्या हाल होगा, यह अनुमान लगाया जा सकता है। रैन बसेरों की हालत दयनीय होती है। गरीबों को कंबल बांटने पर भी राजनीति हर साल देखने को मिलती है। यह स्थिति बुजुर्गों और कल के सूत्रधार बच्चों के लिए कहीं ज्यादा दुखदाई होती है। हर मौसम के विपरीत परिस्थितियों से बचने के लिए सभी को सरकार एक अपना छत दे। रैन बसेरों की संख्या और सुविधाएं बढ़ाए, ताकि सभी लोग सुरक्षित रह सकें। सरकार को इस पर जल्द ही कोई पहल करना चाहिए।

● *नीतीश कुमार पाठक, नई दिल्ली*

भिक्षा से मुक्ति

दो वक्त की रोटी के लिए किसी के आगे हाथ फैलाना अपने जमीर को मारने जैसा लगता है। लेकिन ये किसी से छिपा नहीं है कि भिक्षावृत्ति के उदाहरण अक्सर सड़क किनारे, धार्मिक स्थलों के आसपास या चौक-चौराहों पर दिख जाते हैं। हमारे देश भारत में भीख मांगना और भीख देना पौराणिक कर्म माना जाता है। यहां भिक्षा लेना या मांगना बुरा नहीं माना जाता, बल्कि इसे दान की श्रेणी में रखा जाता है।

वास्तव में गरीबी, भुखमरी और आय की असमानता के चलते देश में एक वर्ग ऐसा भी है, जिसे भोजन, कपड़ा और आवास जैसी आधारभूत सुविधाएं भी प्राप्त नहीं हो पातीं। यह वर्ग कई बार मजबूर होकर भीख मांगने का विकल्प अपना लेता है। भारत में आय की असमानता और भुखमरी की कहानी तो विश्व स्तर की कुछ रिपोर्टों से ही जाहिर हो जाती है। लेकिन आज भिक्षावृत्ति ने एक व्यवसाय का रूप ले लिया है। इस काम में साधु वेश से लेकर फटे-चिथड़े पहने लोग लगे हुए हैं। गली-गली घूम कर, मुहल्लों में जाकर कभी चमत्कार से भरा आशीर्वाद देने तो कभी भूख के नाम पर भिखारी कुछ पाने की अपेक्षा रखते हैं।

इसके निदान के लिए सबसे पहले ऐच्छिक भिक्षावृत्ति और मजबूरीवश अपनाई गई भिक्षावृत्ति में अंतर किया जाना आवश्यक है। साथ ही इन दोनों से निपटने के लिए अलग-अलग नीति बनाए जाने की जरूरत है। इसके लिए व्यापक सर्वेक्षण कराया जा सकता है। सर्वेक्षण से प्राप्त आंकड़ों के सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण के आधार पर एक कानून बनाए जाने की जरूरत है। गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी जैसी समस्याओं से मजबूर लोगों तक मौलिक सुविधाओं की पहुंच सुनिश्चित की जानी चाहिए। इसके अलावा, गंभीर बीमारी से पीड़ित, अपंगता से ग्रसित और छोटी उम्र के बच्चे जो भिक्षावृत्ति को अपना चुके हैं, उनके पुनर्वास के लिए व्यापक स्तर पर प्रयास किए जाने की जरूरत है। इसके लिये पुनर्वास गृहों की स्थापना करके उनमें आवश्यक चिकित्सीय सुविधाएं उपलब्ध कराई जानी चाहिए। उचित कदम उठा कर हम इस समस्या से निजात पाकर भारत को खुशहाल बना सकते हैं।

● *अनु मिश्रा, बिठुना, सिवान*

रोजगार की राह

आज हमारे देश में बेरोजगारी की समस्या इस कदर भयावह हो चुकी है कि युवावर्ग ऊंची-ऊंची डिग्रियां हासिल करके रोजगार की तलाश में इधर-उधर भटक रहे हैं। ये युवा उन तमाम लोगों के अलावा हैं, जिन्हें किसी न किसी बहाने नौकरी से निकाल दिया गया। आखिर किन वजहों से अचानक ही युवाओं को नौकरी मिलनी बंद हो गईं? बाजार में मंदी की जो हालत है, उसमें रोजगार की तबाही की वजह से लोगों की क्रय-शक्ति बेहद गिर चुकी है। नतीजतन, कंपनियां और नौकरी देने वाले संस्थान उत्पादन में भारी कटौती कर रहे हैं। सवाल है कि जब तक लोगों की आमदनी के साथ क्रयशक्ति नहीं बढ़ेगी, तब तक अर्थव्यवस्था की हालत कैसे मजबूत होगी और कैसे युवाओं के लिए रोजगार की राह आसान होगी?

● *कुमारी कविता, गोरखपुर, उप्र*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

www.readwhere.com